Gyanvividha, Vol.-3; Issue-3 (July-September) 2026 : PP-256-261

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध-पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No.- 256-261
©2026 Gyanvividha
DOI : 10.71037/gyanvividha.v3i3.33
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़.

Corresponding Author :

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़.

व्यक्ति निर्माण एवं संगठन निर्माण में भारतीय परिवार प्रणाली की भूमिका

सारांश : भारतीय चिंतन का मूल लक्ष्य सदैव सभी दुःखों एवं बन्धनों से छुटकारा पाते हुए मोक्ष-प्राप्ति रहा है। परम लक्ष्य की पूर्ति हेतु भारतीय ज्ञान-परंपरा में एक सुव्यवस्थित पारिवारिक व्यवस्था प्राप्त होती है, जिसका आधार सोलह संस्कार, पुरुषार्थ चतुष्ट्य तथा वर्णाश्रम व्यवस्था रहे हैं। भारतीय परिवार सदा से व्यक्ति के समाजीकरण, मूल्य-संस्थापन तथा नेतृत्व-निर्माण की प्रमुख संस्था रहा है। भारतीय परिवार व्यवस्था विशेष रूप से संयुक्त परिवार, संस्कार-आधारित जीवनशैली, कर्तव्य-केंद्रित संबंध-संरचना तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होने वाला ज्ञान-हस्तांतरण, व्यक्ति-निर्माण तथा संगठन-निर्माण की प्रक्रियाओं को किस प्रकार प्रभावित करती है। भारतीय परिवार व्यवस्था समाज-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और संगठनों में विश्वास, पारदर्शिता, सामूहिक उत्तरदायित्व तथा दीर्घकालिक दृष्टिकोण को सुदृढ़ करती है। यद्यपि वैश्वीकरण, नगरीकरण तथा एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण परंपरागत संरचनाओं में परिवर्तन आया है, तथापि परिवार-आधारित मूल्य आज भी संगठनात्मक उत्कृष्टता तथा नैतिक नेतृत्व के आधार-स्तंभ बने हुए हैं। यह शोध पत्र भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन हेतु एक वैकल्पिक वैचारिक ढांचा प्रस्तुत करता है तथा नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों एवं प्रबंधन-विशेषज्ञों के लिए व्यावहारिक निष्कर्ष सुझाता है।

बीज शब्द : भारतीय परिवार व्यवस्था, व्यक्ति-निर्माण, संगठन-निर्माण, नैतिक नेतृत्व, संगठनात्मक संस्कृति, संयुक्त परिवार, संस्कार व्यवस्था, कर्तव्यबोध, संस्थागत स्थिरता।

1. भूमिका : भारतीय जीवन पद्धति में सभी व्यवस्थाओं की आधारशिला एवं क्रियान्वयनकारी संस्था परिवार या कुटुम्ब को माना गया। परिवार शब्द 'परि' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'घेरने वाला'। वैदिक काल में परिवार का वाचक शब्द 'कुल' था

जिसका अर्थ 'घर', 'परिवार', 'वासस्थान' (आवास) इत्यादि है । इसी अर्थ में गृह, दम, दम् और धामन् शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। परिवार समाज में संस्कार एवं जीवनमूल्यों का आधान करने वाली मूल संस्था के रूप में सदियों से जानी जाती है।

"आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥"[1]

उक्त कथन परिवार में ज्येष्ठों के सम्मान तथा अनुशासन को व्यक्ति-निर्माण का आधार मानता है। भारतीय परिवार व्यवस्था केवल एक सामाजिक इकाई मात्र नहीं है, अपितु एक ऐसी संरचना है जो व्यक्ति के संपूर्ण विकास तथा उसकी संगठनात्मक क्षमताओं की नींव रखती है।

"पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः।
गुरुराहवनीयस्तु साऽग्नित्रेता गरीयसी॥"[2]

पिता को गार्हपत्य अग्नि, माता को दक्षिणाग्नि और गुरु को आहवनीय अग्नि के समान माना गया है। आगे माता-पिता और गुरु की सेवा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धर्म बताया गया है। भारतीय समाज की आधारशिला सदा से परिवार रहा है। यह केवल रक्त-संबंधों पर टिकी हुई इकाई नहीं, बल्कि एक जटिल सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है, जो व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को गहराई से प्रभावित करती है।

"सिन्हा (1982) के मत के अनुसार परिवार वह पहली संस्था है जहाँ बालक का अन्य व्यक्तियों से निरंतर जुड़ाव बनता है। इस निरंतर संपर्क के माध्यम से वह भिन्न-भिन्न कौशल ग्रहण करता है तथा अपने समाज के अनुकूल मूल्य-बोध विकसित करता है।"[3] तदनुसार अनुकूलन-क्षमता है जिसके कारण भारतीय परिवार शताब्दियों से चले आ रहे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक बदलावों के बावजूद अपने मूल गुणों को बनाए रखने में सफल रहा है।

2. व्यक्ति निर्माण में भारतीय परिवार प्रणाली :

"आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥"[4]

आचार्य ब्रह्मा के स्वरूप, पिता प्रजापति के स्वरूप, माता पृथ्वी के स्वरूप और भाई अपने ही आत्मस्वरूप माने गए हैं। भारतीय संस्कृति में परिवार को संस्कार, मूल्य और जीवन-दर्शन का केंद्र माना गया है। व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास सबसे पहले परिवार में ही प्रारंभ होता है। परिवार ही वह प्रथम संस्था है जहाँ से व्यक्ति जीवन जीने की कला सीखता है। माता-पिता और दादा-दादी बच्चों को अपने आचरण और व्यवहार से जीवन के आदर्श सिखाते हैं। कहानियों, धार्मिक प्रसंगों और दैनिक जीवन की घटनाओं के माध्यम से नैतिक शिक्षा दी जाती है। माता-पिता उसके प्रथम संरक्षक, शिक्षक और संस्कारदाता होते हैं। इसी कारण संस्कृत साहित्य में माता-पिता तथा आचार्य के प्रति श्रद्धा, सेवा और आज्ञापालन को व्यक्ति के धर्ममय जीवन का आधार माना गया है।

इस दृष्टि से मनुस्मृति में माता, पिता और आचार्य के सम्मान तथा सेवा को विशेष महत्त्व प्राप्त है। मनु ने कहा है-

"सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥"[5]

जिस व्यक्ति के लिए माता, पिता और आचार्य आदरणीय हैं, उसके द्वारा धर्म के सभी आचरणों का समुचित पालन माना जाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति माता-पिता और आचार्य का सम्मान नहीं करता, उसके अन्य धार्मिक कर्म भी अपने वास्तविक फल से वंचित हो जाते हैं। मनुस्मृति में आगे कहा गया है-

"यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्।

तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः॥"[6]

जब तक माता, पिता और आचार्य जीवित रहें, तब तक व्यक्ति को उनके प्रति अन्य किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए। उसे उनके प्रति निरन्तर सेवा-भाव रखते हुए उनके प्रिय एवं हितकारी कार्यों में संलग्न रहना चाहिए। इस श्लोक में प्रयुक्त 'शुश्रूषा' शब्द केवल बाह्य सेवा का सूचक नहीं है। इसके भीतर सम्मान, आज्ञापालन, कृतज्ञता, संवेदनशीलता और उत्तरदायित्व जैसी अनेक मानवीय प्रवृत्तियाँ निहित हैं। इस दृष्टि से माता-पिता की सेवा व्यक्ति में विनय, त्याग, सहानुभूति, कर्तव्यबोध और आत्मसंयम जैसे गुणों का विकास करती है। यही गुण आगे चलकर उसके सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं।

परिवार बच्चे को सत्य, अहिंसा, सेवा, त्याग, सहनशीलता जैसे मूल्यों से परिचित कराता है। परंपराओं और संस्कृति से जुड़ाव, पर्व-त्योहार, पूजा-पाठ और पारिवारिक रीति-रिवाज बच्चों को अपनी संस्कृति से जोड़ते हैं। संस्कारों का विकास व्यक्ति को केवल ज्ञानवान नहीं, बल्कि चरित्रवान और उत्तरदायी नागरिक बनाता है। अनुशासन और जिम्मेदारी जीवन के दो ऐसे स्तंभ हैं जो व्यक्ति को सफल, सम्मानित और विश्वसनीय बनाते हैं। जिम्मेदारी का अर्थ है अपने कर्तव्यों को समझना और उन्हें ईमानदारी से निभाना।

भारतीय परिवार भावनात्मक सहारा प्रदान करता है, जिससे आत्मविश्वास तथा मानसिक संतुलन सुदृढ़ होता है। भावनात्मक सुरक्षा का तात्पर्य है ऐसा वातावरण जहाँ व्यक्ति अपनी भावनाएँ, विचार तथा दुर्बलताएँ बिना भय, लज्जा या निंदा के प्रकट कर सके। भारतीय परिवार में भावनात्मक सुरक्षा का होना आवश्यक है, क्योंकि इससे मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहता है, संबंध सुदृढ़ एवं गहरे बनते हैं, आत्मविश्वास में वृद्धि होती है, तनाव तथा चिंता घटती है, और स्वयं को स्वीकार करने की क्षमता बढ़ती है। यह सुरक्षा-भाव हमें परिवार में, विभिन्न संबंधों में यथा दांपत्य अथवा मित्रता, कार्यस्थल पर तथा विद्यालय-महाविद्यालय में भी एक सुरक्षित परिवेश का अनुभव कराता है।

परिवार में जो प्रमुख सदस्य होता है, वह परिवार के संचालन हेतु नेतृत्व करता है तथा प्रत्येक सदस्य का सहयोग भी करता है। नेतृत्व तथा सहयोग - ये दोनों किसी भी परिवार, संगठन, समूह अथवा समाज की सफलता के दो प्रमुख आधार-स्तंभ हैं। जहाँ नेतृत्व दिशा प्रदान करता है, वहीं सहयोग उस दिशा में सामूहिक प्रयास को सुनिश्चित करता है।

3. संगठन निर्माण में भारतीय परिवार प्रणाली : किसी भी संगठन की वास्तविक शक्ति उसमें कार्यरत सदस्यों के चरित्र तथा समर्पण पर आश्रित होती है और यह चरित्र-निर्माण सर्वप्रथम परिवार से ही आरंभ होता है। परिवार वह प्रथम पाठशाला है जहाँ व्यक्ति जीवन के मूल संस्कार ग्रहण करता है, और यही संस्कार आगे चलकर उसे एक उत्तम संगठन-सदस्य बनाते हैं। व्यक्ति का सामाजिक जीवन परिवार से ही प्रारम्भ होता है। वह सर्वप्रथम परिवार के सदस्यों के साथ व्यवहार करना, अपनी आवश्यकताओं को नियंत्रित करना, दूसरों की आवश्यकताओं को समझना, बड़ों का सम्मान करना, छोटों के प्रति स्नेह रखना तथा सामूहिक हित के लिए व्यक्तिगत हित का कुछ अंश त्यागना सीखता है। इस प्रकार परिवार में विकसित होने वाले ये संस्कार आगे चलकर व्यक्ति के सामाजिक एवं संगठनात्मक जीवन को प्रभावित करते हैं।

वैदिक साहित्य में सामूहिक जीवन की सफलता के लिए एकता, संवाद, समान विचार, परस्पर सहयोग और सामूहिक संकल्प को विशेष महत्त्व दिया गया है। ऋग्वेद में सामूहिक जीवन की इसी भावना को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है -

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥"[7]

यह मन्त्र संगठनात्मक जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। इसमें केवल शारीरिक रूप से साथ

रहने की बात नहीं कही गई है, बल्कि 'संगच्छध्वम्' और 'संवदध्वम्' के माध्यम से साथ चलने तथा संवाद करने की आवश्यकता बताई गई है। परिवार के संदर्भ में इसका आशय यह है कि परिवार के सदस्यों के बीच निरन्तर संवाद और परस्पर समझ विकसित होनी चाहिए। केवल एक ही घर में रहना परिवार की वास्तविक एकता का प्रमाण नहीं है; वास्तविक एकता तब उत्पन्न होती है जब परिवार के सदस्य एक-दूसरे की भावनाओं, आवश्यकताओं और विचारों को समझते हुए सामूहिक निर्णय की ओर अग्रसर हों।

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥"[8]

तुम सबकी आकांक्षाएँ समान हों, तुम्हारे हृदय परस्पर सामंजस्ययुक्त हों और तुम्हारे मन एकरूप हों, जिससे तुम सब मिलकर सुखपूर्वक रह सको। इस मन्त्र में प्रयुक्त 'समानी', 'समाना' और 'समानम्' जैसे शब्द सामूहिक जीवन में एकरूपता एवं सामंजस्य की भावना को व्यक्त करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के विचार बिल्कुल समान ही हों, बल्कि इसका मूल भाव यह है कि व्यक्तिगत भिन्नताओं के रहते हुए भी सामूहिक हित के प्रति एक साझा दृष्टिकोण विकसित हो। परिवार में यही भावना संगठन को स्थायित्व प्रदान करती है।

संयुक्त परिवार में जब सभी सदस्य मिलकर कार्य करते हैं, तो व्यक्ति में सामूहिक निर्णय लेने की भावना स्वाभाविक रूप से विकसित होती है और यह भावना किसी भी संगठन की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक होती है।

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥"[9]

मनुष्य को अपने द्वारा अपना उद्धार करना चाहिए और स्वयं को पतन की ओर नहीं ले जाना चाहिए। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु। विषय से सम्बन्ध नेतृत्व का प्रथम आधार आत्म-अनुशासन है। जो व्यक्ति अपने विचारों, इच्छाओं, क्रोध, लोभ और व्यवहार पर नियंत्रण नहीं रख सकता, उसके लिए दूसरों का उचित मार्गदर्शन करना कठिन होता है। बुजुर्गों का अनुभव-आधारित मार्गदर्शन व्यक्ति को उचित निर्णय लेने की समझ प्रदान करता है जबकि परिवार के भीतर पालन किए जाने वाले अनुशासन से व्यक्ति नियम-पालन की आदत सीखता है। यही दोनों गुण संगठन में एक अच्छे नेता तथा एक अच्छे अनुयायी, दोनों रूपों में सफलता दिलाते हैं।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"[10]

विद्यार्थी का अध्ययन, माता-पिता की सेवा, परिवार के कार्यों में सहयोग तथा समाज के प्रति उत्तरदायित्व ये सभी कर्मनिष्ठा का प्रशिक्षण देते हैं। यही कर्मनिष्ठा आगे चलकर संगठनात्मक नेतृत्व का आधार बनती है।

भारतीय परिवार में एक-दूसरे के प्रति सेवा, त्याग तथा सहयोग का वातावरण सहज रूप से विद्यमान रहता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के सुख-दुख में सहभागी बनता है और आवश्यकता पड़ने पर अपने हित को पीछे रखकर भी दूसरों की सहायता करता है। यही भावना आगे चलकर व्यक्ति को समाज तथा संगठन के लिए निःस्वार्थ भाव से कार्य करने हेतु प्रेरित करती है। जो व्यक्ति परिवार में त्याग करना सीख चुका होता है, वह संगठन में भी सामूहिक हित को व्यक्तिगत हित से ऊपर रखने में सक्षम होता है।

परिवार में नियम, परंपरा तथा मर्यादा का पालन करना एक स्वाभाविक जीवन-पद्धति होती है। बचपन से ही व्यक्ति यह देखता तथा सीखता है कि किस प्रकार निर्धारित सीमाओं के भीतर रहकर कार्य किया जाता है, और किस प्रकार सामूहिक मर्यादा का सम्मान किया जाता है। यही आदत आगे चलकर व्यक्ति को संगठन के नियमों तथा कार्य-प्रणाली का पालन करने में सहायक सिद्ध होती है। जो व्यक्ति परिवार में अनुशासन तथा मर्यादा का पालन करना

सीखता है, वही संगठन में भी एक विश्वसनीय तथा उत्तरदायी सदस्य के रूप में स्थापित होता है।

"ॐ असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥"[11]

यह मंत्र मूल रूप से एक आध्यात्मिक प्रार्थना है, जिसमें व्यक्ति परमात्मा से अपने भीतर के अज्ञान और भ्रम को दूर करने की प्रार्थना करता है। परन्तु इसमें जो मूल भावना छिपी है - असत्य से सत्य की ओर बढ़ना, अंधकार से प्रकाश की ओर जाना, और मृत्यु जैसी स्थिति से जीवन की ओर लौटना - यह भावना केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं रहती। इसका एक व्यापक अर्थ समाज और शासन-व्यवस्था के संदर्भ में भी समझा जा सकता है।

"मातृदेवो भव।
पितृदेवो भव।
आचार्यदेवो भव।
अतिथिदेवो भव।"[12]

भारतीय परिवार व्यवस्था केवल पारिवारिक संबंधों तक सीमित नहीं है, अपितु यह व्यक्ति के भीतर सामूहिकता, नेतृत्व, अनुशासन, त्याग तथा नियम-पालन जैसे संगठनात्मक गुणों की आधारशिला भी रखती है। परिवार में सीखे गए ये मूल्य ही आगे चलकर किसी भी सशक्त तथा सफल संगठन के निर्माण का आधार बनते हैं।

"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।"[13]

यहाँ सत्य, धर्म, स्वाध्याय और कर्तव्य- इन चारों को जीवन के अनुशासन से जोड़ा गया है। परिवार और गुरु-परम्परा मिलकर व्यक्ति को ऐसे जीवन के लिए तैयार करते हैं जिसमें व्यक्तिगत आचरण और सामाजिक उत्तरदायित्व दोनों का समन्वय हो।

4. निष्कर्ष : अतः कहना न होगा कि भारतीय परिवार प्रणाली व्यक्ति निर्माण और संगठन निर्माण दोनों की आधारशिला है। परिवार में संस्कार होंगे तो व्यक्ति श्रेष्ठ बनेगा और श्रेष्ठ व्यक्तियों से ही सशक्त संगठन और समृद्ध राष्ट्र का निर्माण होगा। इसलिए हम सभी का यह कर्तव्य है कि हम अपने परिवार में संवाद, संस्कार और सांस्कृतिक मूल्यों को जीवित रखें, भारतीय दृष्टि में राष्ट्र निर्माण का मार्ग परिवार से होकर ही जाता है।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"[14]

हम सब एक हैं । पूरी सृष्टि एक है । इसलिए भारतीय ज्ञान परम्परा में संसार को 'वसुधैव कुटुंबकम्' (पृथ्वी एक परिवार के रूप में) के रूप में जाना जाता है। सनातन परम्परा की मान्यता के अनुसार पृथ्वी एक परिवार है और धरती हमारी माता है इसलिए इसका संरक्षण करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। यही भावना व्यक्ति को संस्कारवान और अनुशासित बनाती है। यह कहना अत्यंत आवश्यक है की उपयुक्त परिवर्तनशीलता केवल बाह्य परिवर्तन मात्र है क्योंकि किसी भी परंपरा का निर्वहन न केवल समाज व संगठन करते हैं जबकि यह संरचना की एक इकाई मात्र है परिवर्तन। उपर्युक्त कथन अनुसार बाह्य होने का कारण हमारी संस्कृति का अदृश्य रूप से हमारे आंतरिक संरचना के में प्रभाव है। क्योंकि भारत की सभ्यता एवं संस्कृति एक अविरल प्रवाह में प्रवाहित होती आई है। वेदों-उपनिषदों व अन्य कालखण्डों में रचित महाकाव्यों के प्रेरणा स्रोत हमारी संस्कृति के प्रमुख प्रस्थान बिंदु है।

5. सन्दर्भ सूची :

1. *मनुस्मृति,* 2.225

2. *मनुस्मृति*, 2.231
3. Sinha, Durganand. "*Some Recent Changes in the Indian Family and Their Implications for Socialisation*." *The Indian Journal of Social Work*, vol. 45, no. 3, 1984, pp. 271–286.
4. *मनुस्मृति*, 2.226
5. *मनुस्मृति*, 2.234
6. *मनुस्मृति*, 2.235
7. *ऋग्वेद*, 10.191.2
8. *ऋग्वेद*, 10.191.4
9. *श्रीमद्भगवद्गीता,* 6.5
10. *श्रीमद्भगवद्गीता,* 2.47
11. *बृहदारण्यकोपनिषद्*, 1.3.28
12. *तैत्तिरीयोपनिषद्*, 1.11
13. *तैत्तिरीयोपनिषद्*, 1.11
14. बृहदारण्यक उपनिषद् 5.1.1

6. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *ऋग्वेद, सायणभाष्यसहित*, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1941
2. शास्त्री, हरिदत्त एवं कुमार, कृष्ण (सं.) *ऋक्सूक्तसंग्रह*, साहित्य भण्डार, मेरठ
3. *ईशादि नौ उपनिषद्,* गोयन्दका हरिकृष्णदास (संपा.), गीताप्रेस गोरखपुर, कोलकाता का संस्थान, छत्तीसवां पुनर्मुद्रण, संवत – 2074.
4. *कल्याण - हिन्दू संस्कृति विशेषांक*, गीताप्रेस, गोरखपुर
5. *मनुस्मृतिः, मेधातिथि-मनुभाष्य-समेता*, झा, गङ्गानाथ (सम्पा.), परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1998
6. ज्ञानी, शिवदत्त, *भारतीय संस्कृति*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7. नारायण, हर्ष, *भारतीय सनातन संस्कृति–विविध आयाम*, न्यूभारतीय बुक कोर्पोरेशन, दिल्ली
8. उपाध्याय, बलदेव, *वैदिक साहित्य और संस्कृति*, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1989
9. *गृहशास्त्र – परिवार व्यवस्था विषयक संदर्भ ग्रन्थ*, काटदरे, इन्दुमति (संपा.), पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट, अहमदाबाद, द्वितीय प्रकाशन, 2019
10. Kapoor, Dr. Kapil, *Encyclopedia of Hinduism* (11 Vols.), Rupa Publication, 2012
11. गुप्ता, टी. एन., *भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास*, न्यूभारतीय बुक कोर्पोरेशन, दिल्ली
12. Kane, P.V., *History of Dharmashastra*, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune, 1962.
13. Sinha, Durganand, "*Some Recent Changes in the Indian Family and Their Implications for Socialisation*." Paper prepared for the Conference on *Changing Family in a Changing World*, German Commission for UNESCO, Munich, 22–25 Nov. 1982. UNESCO Document 55-83/WS/42.

•